पञ्चेन्द्रियचरित्र ।

महात्मा सुंदरदास कृत ।

जिसको

रायसाहेब पंडित चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी जीने
हस्त लिखित पुरानी पुस्तकोंसे शोधकर
संपादित किया ।

वही

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन,

निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें

मुद्रितकर प्रकाशितकिया ।

संवत् १९७० विक्रम, सन् १९१३ ई०

विज्ञापन।

इन्हीं पंडित चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी कृत सटीक अंगबंधू वाणी स्वामी दादूदयालजी की जिसकी शुद्ध टीका और अनोखी संपादक रचना की अनेक महात्माओं और विद्वानोंने प्रशंसा की है, सुंदर मोटे अक्षरों और चिकने कागज़पर कोश और इंडेक्स (अकारादि क्रम से विषय अनुक्रमणिका) सहित, सुनहरी छापकी पुष्ट रंगीले कपड़े की जिल्द बंधी तैयार है। मूल्य ५)

पुस्तक मिलनेका—ठिकाना—

पंडित चंद्रिकाप्रसादजीकी कोठी,

जोन्सगंज, अजमेर.

अनुक्रमणिका ।

॥ श्रीरामजी ॥

पञ्चेन्द्रिय चरित्रकी भूमिका

सुन्दरदासजी ने यह छोटा सा काव्य संवत् १६९१ विक्रम में रचा था। इसका नाम है पञ्चेन्द्रिय चरित्र। सुन्दरदासजी के अनेक ग्रन्थ छप चुके हैं; पर यह ग्रन्थ मैंने अभी तक छपा हुआ नहीं देखा। सुन्दरदासजी के और कई ग्रन्थ अभी तक नहीं छापे गये हैं। और जो छपे हैं सो सर्वथा शुद्ध नहीं हैं, ये सब ग्रन्थ पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं। इनके शोधने का काम हो रहा है, तैयार हो जानेपर उचित प्रकार से छपवाये जाँयगे।

यह पञ्चेंद्रिय चरित्र इंद्रियों को विषयों के दूषणों से बचाने के लिये रचागया है। संसार में जय तथा आत्मतत्त्व की प्राप्ति में इंद्रियां और मनही मनुष्यका सीधा अथवा उलटा साथ देती हैं। ये मनुष्य के आधीन हैं और मनुष्य इनका स्वामी है। यदि स्वामी भाव जो अपने हाथ में है मनुष्य बनाये रक्खै तो ये इंद्रियां और मन मनुष्यका सीधा साथ देती हैं, यदि मनुष्य आपनपव भूलकर नौकरौं के आधीन होजाय तो उसका अधःपतन संभव है।

पुरुषकी स्वतंत्रता, पुरुषत्व और पुरुषार्थ में हानि बहुत करके इंद्रियों से उचित उपयोग न लेने ही से होती है, इसलिये इंद्रियों का निग्रह सर्वजनों के लिये लाभदायक है। भगवद्गीता में कहा है कि इंद्रियों का विषयों से रोकना मनुष्य की बुद्धि को स्थिर करके सर्वप्रकार की सामर्थ्य देता है। और मन और इंद्रियों के आचरण पर ही मनुष्य का जीवन सुख निर्भर है। बुद्धि शुद्ध अथवा स्थिर तभी होती है जब मनुष्य का शारीरिक और मानसिक बल ठीक होता है। इन बलों का ठीक बनाये रखना जगत् के संपूर्ण व्यवहारों में आवश्यक है।

विषयों में अयुक्त प्रीति मनुष्य के बंधन का हेतु है। किसी एक वस्तु का अतीव चिंतन करना पुरुष को अपनी सम अवस्था से गिरा देता है। ऐसे चिंतन करने से वस्तु में (संग) आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से काम, काम से क्रोध, क्रोध से मोह, मोहसे स्मरण शक्तिका नाश, इससे बुद्धिकी हानि, बुद्धिके नाशसे जीता हुआ भी मनुष्य निर्जीव हो जाता है।

इसके विपरीत, विषयों को अपना सहकारी जानकर उनसे उचित उपयोग लेते रहना संसार सागर से पार उतरने का उचित उपाय है।

विषयों का सर्वथा त्याग हो नहीं सक्ता, क्योंकि विषयों के उपयोग बिना व्यवहार असंभव होगा। शास्त्रकारोंने आत्मतत्त्व को मुख्य माना है, व्यवहारको गौण

रक्खा है; आत्मतत्त्व को भूलकर विषयों के पीछे जाना हानिकारक है । इसलिये आत्मतत्त्व को दृष्टि में रखकर विषयों को गौण भाव से ही संपादन करना उचित है । यह कहना सही नहीं कि संसार असार है, क्योंकि संसार का कारण ब्रह्म है सो ब्रह्म सत् है, सत् का कार्य असत् हो नहीं सक्ता । इसीलिये वेदांत में सत् असत् से विलक्षण संसार को अनिर्वचनीय माना है ।

मनुष्य के पांच ज्ञान इंद्रियां हैं, तिनके पांच ही प्रकार के विषय हैं, अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध । इनका उपयोग जीवन व्यवहारमें आवश्यक है । हरएक विषय को संकेत से लाभदायक अर्थ में लगाना विचारवान का काम है, तैसे ही प्रत्येक विषय के हानिकारक अंगों से बचना मनुष्य के पुरुषार्थ में उपयोगी है । महात्मा सुंदरदासजी ने ऐसी हानियों से बचने के उपाय अच्छी तरह से इस ग्रंथ में दर्शाये हैं ।

जगत् का आधार परमात्मा है, उसीसे यह संपूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है । उसीका आनंद लेकर सब जगत् आनंदमय प्रतीत होता है । वही परमात्मा सर्व शिरोमणि है और सब सुंदरोंमें सुंदर है । वही परम निधि है, वही हमारे प्रेमका स्थान है, यथा—

> सब लालौं सिर लाल है, सब खूबौं सिर खूब ।
> सब पाकौं सिर पाक है, दादूका महबूब ॥
> सब रँग तेरे तैं रँगे, तूं ही सब रँग मांहिं ।
> सब रँग तेरे तैं किये, दूजा कोई नांहिं ॥

जब मन या इंद्रियां विषयों की तरफ जाने लगें तब आदिसत्ता, परम ज्योति, परम अविनाशी सौंदर्य, परम मित्र, सदा संगाती अपने अंतरवासी आत्मा (परमात्मा) का ध्यान करना चाहिये । परमात्माके सदैव स्मरणसे इन्द्रियों का जीतना सहज है । उस ज्योतिका अद्भुत रूप रंग एकवार देखकर संसार के संपूर्ण विषय तुच्छ प्रतीत होते हैं । अपार निधि को पाकर कोई अनित्य तुच्छ पदार्थों की चाह नहीं करता, जब हम उसे भूलजाते हैं तभी विषयों से प्रीति होती है । परमात्मा के मोहनीरूप को न जान कर हम बाह्य विषयों में फँस जाते हैं । वास्तव में विषयों में असली आनंद है नहीं, है केवल परमात्मा के आनंद स्वरूप की छाया, इसीसे हम वांछित विषय को पाकर भी तृप्त नहीं होते, एक विषय को पाकर मृगतृष्णाके जलवत् दूसरेके पीछे धाया करते हैं, तृप्ति किसी विषयसे नहीं होती, यथा—

चाहूं तब पाऊँ नहीं, पाकर नहीं अघाउँ। निरस सकल संसार यह, तृप्ति कहां से पाउँ॥
चाहूं तब पाऊँ नहीं, पाऊँ तब न सुहाय। मन भूला मानै नहीं, आन विषय दौड़ाय ॥
हरि बसे ते प्यारे लागें, नेरे ते न सुहायँ। अद्भुत गति संसारकी, प्यारे मिलि निरसायँ॥

बहुधा लोग उदासीन भावों को दोष देते हैं, कि भारत वासियोंकी उदासीनता ही उनकी हीन दशाका कारण है । यह कहना ठीक नहीं है । भारत के दुर्भाग्य के अनेक कारण हैं जिन में मुख्य कारण भारतवासियों में विद्याका अभाव और परस्पर अनमेल, उन्नतिके नये मार्गोंमें निरुत्साह, आवश्यक वस्तुओंके बनाने और व्यापार के कामों को छोड बैठना, इत्यादि हैं, उदासीनता एक सच्चे भाव को दर्शाती है, उस को भारत की अधोगति का कारण ठहराना उचित नहीं । उदासीनता ही मनुष्य को सदाचार में दृढ़ता देती है, भारत का अपूर्व सदाचार ही है जिसने भारत की अत्यंत गिरी अवस्था में भी भारत वासियों को आजपर्यंत जीवित रक्खा है । यदि भारतमें सदाचार न होता तो आज हमारा ठिकाना कहां होता ? दुनिया के चाहो जिस देश को लो भारत की कोमलता, सब प्राणियों से न्याय सहित व्यवहार, शांतवृत्ति आप कहीं न पाओगे। भारत की हीन दशा व्योहार के गूढ़ भावों को भूल जाने से हुई है, उस से भी अधिक हानि भारत के मूल सिद्धांतों के लोप होजाने से संभव है । पुरुषत्व भारत वासियों में दिन २ घटता जाता है, यह एक भारी सोच का विषय है ।

यद्यपि भारत अज्ञान में ग्रसित अन्य देशों से आर्थिक दशा में हीन है तथापि जिन देशों की आर्थिक दशा ऊंची प्रतीत होती है उन की असली दशा दुःखोंसे खाली नहीं है । योरप में विशाल धन, कलों का प्रचार, सर्व साधारण में शिक्षा, विज्ञान (science) की वृद्धि, बड़ी २ इमारतें, स्वास्थ्य के अद्भुत उपाय, अति ही मिष्ट शील भाषण और ऊपरी दिखावों के होते भी नाना प्रकार की अंतरी तृष्णा, कलह लड़ाइयां, उन बड़े देशों की बुनियादों को हला रही हैं ।

जगत से किंचित उदासीन रहना भारतवासियों में दूषण नहीं किंतु भूषण है । पर उसके साथ हम यह कहना भी उचित समझते हैं कि संसार को सर्वथा असार मानना सही नहीं है । पारमार्थिक और व्यावहारिक दोनों अवस्थाओं में हमको संसार की सहायता जरूर है, इसलिये उचित प्रकार से हम को सांसारिक उन्नति करते हुए परमार्थ को सुधारना लाज़िम है। संसार सुधारे विना परमार्थ सुधर नहीं सक्ता, इस लिये पहले संसार को सुधारें, तब आत्मलाभ का आनंद लें ।

मनुष्य का जीवन साफल्य, संसार सागर से पार उतरना दो मुख्य भावों पर निर्भर है अर्थात्ः—

(१) जगत् का यथार्थ ज्ञान जिस को सदैव स्मरण रखना उचित है ।

(२) इंद्रियौं का उचित उपयोग और वर्ताव ।

जगत का साधारण ज्ञान यह है कि परमार्थ मुख्य है, व्यौहार गौण है, व्यौहार में विचरते हुए परमार्थ का ध्यान आवश्यक है, इसी लिये जगतके जितने पदार्थ हैं उन से उचित उपयोग लेना सहकारी है ।

परमार्थ को भूल जाने से हम काम क्रोध लोभ मोह में फँस जाते हैं, नाना प्रकार की कामना करते हुए ईर्षा द्वेष भयादि क्लेशौं से शारीरिक रोगौं में ग्रसित रहते हैं, हमें अच्छी तरह से जान लेना चाहिये कि परमार्थ ही नित्य है, संसार के सुख दुःख चंदरोज़ः हैं, हमेशा नहीं रहते । जिन को आज हम खिले फूलौं की तरह शोभायमान देखते हैं वेही कुछ दिन पीछे कुम्हिलाये मुरझाये अशोभनीय होजाते हैं । जो आज प्यारे दीखते हैं वे ही कालांतरमें शुष्क अथवा कड़वे होजाते हैं, यह विचित्र लीला जगत में सर्वथा पाई जाती है, ऐसे जगत की सामयिक चमक भड़क को देखकर विचारवान अपने मन को स्थिर रखते हैं ।

जे जे इंद्रिय भोग अपारी । ते सब ही कहिये दुखकारी ॥
एक दिन आवत बहुरि विलाई । तातैं विद्रुष न तिनहि गहाई ॥

किसी भी विषय के निमित्त अत्यंत कामना रखना उचित नहीं । बहुधा मनुष्य धन, यश, स्त्री आदि के लालच में फँस कर अपने मूल कर्तव्य को भूल जाते हैं और हीन दशाओं को प्राप्त होते हैं । ऐसी ही कामनाओं से मनुष्य अपनी स्वतंत्रता खो देता है, बहुधा विना विचारे आवश्यक धनादि पदार्थौं के होने पर भी अधिक पानेकी तृष्णा में डूबा रहता है । यदि अपने आवश्यक पदार्थौं का विचार रक्खै और अति लोभ न करै तौ दीन भावौं से वचा रहे, ईर्षा द्वेषादि क्लेशौंसे भी वचा रहे । प्रत्येक मनुष्य वा स्त्री को ईश्वर ने अपने निर्वाह की पूरी सामर्थ्य दी है, बहुधा जन अपना ही निर्वाह नहीं किंतु अपने आधीन कुटुम्बियौं और पड़ोसियौं को भी सहायता देने की सामर्थ्य रखते हैं, इस शक्ति के होने पर जन क्यौं किसी के आधीन हौं यदि वह अपनी कामनाओं को उचित हद तक रक्खें ? व्यर्थ कामनाओं का रोकना प्रत्येक मनुष्य और स्त्री को अत्यावश्यक है । सच की बराबर कोई शक्ति नहीं है, सच को धारण कर, नीच कामनाओं को त्याग कर जन निर्भय स्वतंत्र वास करे, होसके तौ अपने सहवासियौं को सहारा दे, यही मनुष्य का कर्तव्य है ।

झूठी कामनाओं में पड़कर अपना जीवन मूल गँवांना उचित नहीं, बहुधा हम जगत की चमक भड़क देखकर भूल जाते हैं, रेतीली भूमि को दूर से देखकर

जल मान लेना एक प्रकार की भ्रांति है, इस भ्रांति में बहुधा प्यासे मृग दौड़कर दुःखी होते हैं, इसी प्रकार के अनेक विषय इस संसार में हैं, उन से बचने के लिये महात्माओं ने अनेक प्रकार के उपदेश किये हैं, यथा—

मन रे तू देखै सो नाहीं, है सो अगम अगोचर मांहीं ॥ टेक ॥
निश अँधियारी कछू न सूझै, संशय सरप दिखावा ।
ऐसें अंध जगत नहिं जानें, जीव जेवड़ी खावा ॥ १ ॥
मृग जल देखि तहां मन धावै, दिन दिन झूठी आसा ।
जहँ जहँ जाइ तहां जल नाहीं, निहचै मरै पियासा ॥ २ ॥
भर्म विलास बहुत विधि कीन्हा, ज्यों सपने सुख पावै ॥
जागत झूट तहां कछु नाहीं, फिरि पीछे पछितावै ॥ ३ ॥
जब लग सूता तब लग देखै, जागत भर्म भुलाना ॥
दादू अंत यहां कछु नाहीं, है सो सोधु सयाना ॥ ४ ॥

इस प्रकार के भ्रमोत्पादक विषयों में नारी पुरुष के लिये और पुरुष नारी के लिये मुख्य जाल माने गये हैं । इश विषय पर महात्मा पुरुषों के कुछ वाक्य हम आगे उद्धृत करते हैं, उन में जो उपदेश मनुष्य के लिये कहे हैं उन के विपरीत भावों को मनुष्य से बचने के लिये स्त्रियों को लेना उचित है ।

जहां महात्माओं ने यति संन्यासियों के लिये उपदेश किया है तहाँ स्त्री से मेल मिलाप तथा दर्शन और बात चीत सर्वथा वर्जी है, जैसा कि निम्न लिखे वाक्यों में—

नारी नैन न देखिये,मुख सौं नांव न लेइ ।कानौं कामिनि जिनि सुनैं,यह मन जान न देइ ॥
अहि विष तनकाटेचढै,यह चितवत चढि जाइ।ज्ञान ध्यान पुनि प्राणहू,लेत मूलयुत खाइ ॥
नारी वैरिणि पुरुष की, पुरुषा वैरी नारि । अंतकाल दोनौं मुये दादू देखु विचारि ॥
नारी भली न काष्ठकी, कागद में चित्राम । जयमल दर्शन मति करौ,तुरत जगावै काम॥

यह नियम यति ब्रह्मचारियों के लिये परमावश्यक हैं, केवल संन्यासियों के ही लिये नहीं किंतु नवयुवक विद्यार्थियों के लिये भी ॥

गृहस्थ आश्रम लेना अथवा यति ब्रह्मचारी रहना यह प्रश्न प्रत्येक मनुष्य और स्त्रीके स्वभाव और इच्छा पर निर्भर है, भारत में यति और ग्रहस्थ दोनौं होते आये हैं । माता पिता बहुत कर अपने बालक और लड़कियों को गृहस्थी में ही रखना पसिंद करते हैं, इसी कारण से बाल विवाह की रीति भारत में प्रचलित है । तिस पर भी अनेक मनुष्य गृहस्थी को नापसिंद करते हैं, कभी २ विवाह करनेसे पहले अथवा पीछे गृहस्थी को त्याग कर साधुओं के भेषों म जा

मिलते हैं, ऐसे साधुओं की संख्या भारत में बहुत अधिक है, तिनमें कुछ महात्मा सच्चे साधु भी होते हैं जो अपना जीवन पठन पाठन वेद विचार और ब्रह्मके चिंतन में व्यतीत कर भारत की प्राचीन विद्या को जीवित रक्खे हैं। परंतु अधिक भेष-धारी आलसी होते हैं और देश का कुछ भी उपकार नहीं करते, केवल गृहस्थों पर अपने जीवन का भार डालते हैं और भगवे रंग को लज्जित करते हैं । साधु का भेष उन्ही को लेना उचित है जो सर्व प्रकार से अपना जीवन अपने देशहित में लगानेका संकल्प करें, साधु महात्माओं को भी उचित है कि जो इस प्रकार से अधिकारी न हो उस को भेषमें भरती न करें । जो आलस्य से साधु का वाना लेना चाहते हों उन को उद्यम में लगने का उपदेश देना उचित है ।

जिन युवा मनुष्यों या स्त्रियों को अपना जीवन परोपकार में लगाना उचित वन पड़े उन को स्वतंत्र यति आश्रम धारण करना शोभा देगा, उनके लिये स्वामी दादू दयाल के वाक्य अति उपयोगी हैं—

वहण वीर सव देखिये, नारी अरु भरतार ।
परमेश्वर के पेट के, दादू सव परिवार ॥
माया के घर साजि द्वय, त्रिया पुरुष धरि नांव ।
दोन्यूं सुंदर खेलैं दादू, राखि लेहु वलि जांव ॥
करै न नारी नेह पुरुष, नहिं नारि पुरुष सैं ।
रक्खैं कर्तव्य ध्यान, जाँय नहिं भूलि मरम सैं ॥
जे नर कामिनि परिहरैं, ते छूटैं गर्भ वास !
दादू ऊंचे सुख नहीं, रह निरंजन पास ॥
माता नारी पुरुष की, पुरुष नारि का पूत ।
दादू ज्ञान विचारि करि, छोड़ि गये अवधूत ॥
गरथ न बांधै गांठड़ी, नहिं नारी सों नेह ।
मन इंद्री स्थिर करै, छांडि सकल गुण देह ॥

मनुस्मृतिमें यति ब्रह्मचारी के लिये निम्न निषेध कहे हैं:—

वर्जयेन्मधु मांसञ्च गंधं माल्यं रसान्स्त्रियः ।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥ १७७ ॥ २ अ०
अभ्यंगमञ्जनञ्चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम् ॥ १७८ ॥ २ अ०

घृतञ्च जनवादञ्च परिवादन्तथाऽनृतम् ।
स्त्रीणाञ्च प्रेक्षणालम्भमुपघातम्परस्य च ॥ १७९ ॥ २ अ०

जिन को गृहस्थाश्रम पसंद हो उन को उचित अवस्था पर धर्मानुसार अपने कुटुम्ब के वृद्ध जनों की सम्मति से एक शीलवती कुमारी से विवाह कर लेना उचित है । यह स्मरण रहे कि सर्व प्रकार से वांछित गुण कहीं जगत में मिल नहीं सकते. इसलिये अपनी प्राप्त स्त्री के उन्ही गुणों से संतोष करना उचित है जो अपने स्वभाव से मिलते हों, महात्माओं ने सच कहा है–

बहुत मिले बहु भांति, मन अनमिल सब सों रह्यौं ।
जासों जिये की पांति, ते दुर्लभ जग पावने ॥
ज्ञान सरीखा गुरु न मिल्यगा, चित्त सरीखा चेला ।
मन सरिखा मनमेलू न मिल्यगा, तार्थे गोरख फिरे अकेला ॥
मनमेलू मन सारिखा, मिले न होय समाधि
परसा रहिये एकला, तजि दूसरी उपाधि ॥
मिलिये तौ जो मन मिले, मनके मते न मेल ।
जगनाथ नीकी इहैं, एका एकी खेल ॥

सर्व प्रकार से वांछित तत्त्व परमात्मा ही है, जिस को पाकर यति शांति पाताहै, सो आत्मा " सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्, अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यंति यतयः क्षीण दोषाः " ॥

सो आत्मा सर्व प्रकार से प्राप्त करने योग्य हे, विषयोंकी ओर मन के जाते हुये भी अंतर इच्छा जीव की आत्म तत्व ही पर होती है, क्योंकि वांछित विषय को पाकर भी अंतर तृप्ति नहीं होती । अंतर इच्छा वारंवार उस अमोल तत्त्व को ही चाहती है जिसकी सदृश और कोई वस्तु है नहीं, यथाः–

दुहुं जग जाकी उपमा नाहीं । रे मन सोई बसे त्वहि मांहीं ॥
जा स्वरूप सब जगत भुलाना । ऐसी सुंदरि कोउ नाहिं आना ॥
कामिनि कामकला अधिकाई । ताहि न मिले तौ कह चतुराई ॥
जाकी चमक झलक जग मोहे । जा बिन कोऊ फूल न सोहै ॥
जो फूलन को दे सुंदरता । सोई उमँग मांहिं मन करता ॥
जिते जवाहिर चुनि चुनि लावा । दीपक चंद झरोखें आवा ॥
उदित प्रकाश महल अस मेरा । सब जग देखूं सोइ उजेरा ॥

ऐसे आत्म सुख आनंद को एक वार पाकर योगी फिर विषय आनंद की इच्छा नहीं करता । सब जीवोंकी हार्दिक इच्छा परमानंद के लिये होती है, सो आनंद सदा अपने ही अंदर है, उसका संचय करना हमारा कर्तव्य है, वही परम निधि है, वही परम धन है, वही परम सुंदर है, वही परम शक्ति है, वही परम धाम है, उस से मिलने की कामना करनी चाहिये, यही परम जिज्ञासा है ॥ इंद्रियों को उचित प्रकार रोकने से मनुष्य वल पौरुष पराक्रम धन दीर्घआयु और सर्व प्रकार के सुखों को प्राप्त कर सक्ता है, इस लिये इंद्रिय निग्रह एक परम साधन है ॥

बम्बई
२४ जून १९१२ } चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी,

श्री रामजी ॥
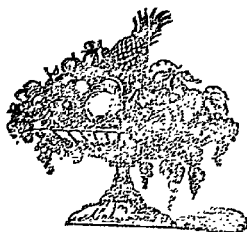
महात्मा सुन्दरदासजी का चरित्र।

महात्मा सुन्दरदासजी हिन्दी के पुराने कवियों में उत्तम श्रेणी के कवि हैं उनकी कविता सरस हो कर गंभीर है। उनके ग्रन्थ नाना प्रकार के छन्द, दोहे, चौपाई, कवित्त, सवैयों आदि से परिपूर्ण हैं। हिन्दी के कवियों में सुन्दरदासजी को दादू पन्थी सुजन सर्वशिरोमणि मानते हैं। शायद हिन्दी के अन्य रसिक इस पदवी का अधिकार गुसांई तुलसी दास ही को देंगे, पर मेरी अल्प बुद्धि में ये दोनों महात्मा बराबरी की पदवी पाने योग्य हैं। गुसांई जी की रामायण युक्त प्रदेश में बहुत प्रचलित है। इसलिए गुसांई जी की महिमा वहाँ अधिक सुनने में आती है। पर सुन्दरदासजी के काव्य बहुधा साधुमन्तों ही में प्रचलित हैं; सर्व साधारण में उनका प्रचार रामायण की तरह नहीं हुआ है। जब सुन्दरदासजी के ग्रन्थ अच्छी तरह प्रचलित हो जायँगे तब उनकी भी कीर्ति हिन्दी-रसिकों में उसी प्रकार फैल जायगी।

सुन्दरदासजी केवल कवि ही नहीं, किन्तु षट्शास्त्रों के पूरे ज्ञाता थे—सांख्य, योग और वेदांत के अद्वैत वाद में अति निपुण थे। कर्म-योग, भक्ति-योग और ज्ञान-योग को जिस प्रकारसे इन्होंने पहले पहल हिन्दी में दरसाया है उस प्रकार किसी दूसरे ग्रन्थकार ने नहीं किया। इसलिए शास्त्रीय विषयों के हिन्दी-ग्रन्थकारों में महात्मा सुन्दरदासजी का आसन सबसे प्रथम है। अपने भक्तमाल में महात्मा राघवदासजी ने सुन्दरदासजी को शङ्कराचार्य्य के बराबर बतलाया है।

सुन्दरदासजी का जन्म-समय किसी ने नहीं लिखा; पर अनुमान से संवत् १६५२ विक्रम में उनका जन्म हुआ मालूम होता है। महात्मा सुन्दरदासजी ने अपने अन्त समय में एक साखी कही थी। उसमें उन्होंने ९३ वर्ष की अपनी आयु बतलाई है। वह साखी यह है:—

> सात बरस सौ में घटै, इतने दिन की देह।
> सुन्दर आतम अमर है, देह पेह को पेह॥

संवत् १८८४ की लिखी (नकल की) हुई इनकी एक पुस्तक के अन्त में ये पद मिलते हैं:—

> संवत सत्रह सै छीयाला। कातिक की अष्टमी उजाला॥
> तीजे पहरि बृहस्पति वार। सुन्दर मिल्यया सुन्दर सार॥
> इकती सौ तिराणवे, इतने वरष रहन्त।
> स्वामी सुन्दरदास कौ, कोई न पावौ अन्त॥

धनि जननी ऐसौ जन्यौ, धनि धनि वाकौ बाप ।
स्वामी सुन्दरदास के, गुरु दादू की छाप ॥

इस लेख के अनुसार संवत् १७४६ में इनका अन्तकाल हुआ था। उसमें ९३ वर्ष उनकी आयु के घटा दें तो संवत् १६५३ विक्रम उनके जन्म का समय निकलता है।

महात्मा राघवदासजी ने सुन्दरदासजी के जन्म के विषय में लिखा है कि धौंसा नगर में दूसर वैश्य महाजनों के घर में सुन्दरदासजी का जन्म हुआ था । जयपुर के पास दौंसा नामक आज कल एक रेलवे-स्टेशन है। वहीं इनका जन्म-स्थान है । सुन्दरदासजी के माता-पिता पुत्र की कामना से स्वामी दादू-दयाल के पास गये । दयालजी ने कहा कि पुत्र तुम्हारे अवश्य होगा; पर वह तुम्हारे घर में न रहेगा। इस के बाद सुन्दरदासजी का जन्म हुआ। जब वे पाँच वर्ष के थे तब स्वामी दादूदयाल नाना स्थानों में उपदेश करते हुए दौंसे भी गये। सुन्दरदासजी की माता ने बालक सुन्दरदासजी को स्वामी के चरणों में लाकर डाला । दयालजी ने कृपापूर्वक सुन्दरदासजी के मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया । महात्मा जन-गोपालजी ने (जो दयालजी के साथ उस समय गये थे) स्वामी दादूदयाल की जन्म-लीला में यह चौपाई लिखी है:—

पुनि धौंसा मैं कियौ प्रवेसू। पेमदास अरु माथौ जेसू ॥
बालक सुन्दर सेवग छाजू। मथुराबाई हरि सौं काजू ॥

सुन्दरदासजी ने स्वयं भी अपने "गुरु-सम्प्रदाय" नामक ग्रन्थ में अपना हाल इस प्रकारसे वर्णन किया है:—

प्रथमहिं कहौं आपनी बाता। मोहिं मिलायो प्रेरि विधाता ॥
दादू जी जब धौंसैं आये। बालपनैं हम दरसन पाये ॥
तिनके चर्णन नायौं माथा। उन दीयौ मेरे सिरि हाथा ॥
स्वामी दादू गुरु है मेरौ। सुन्दरदास शिष्य तिन केरौ ॥

ग्यारह वर्ष की अवस्था तक सुन्दरदासजी अपने घर पर ही रहे । पीछे गृह त्याग कर वे काशीजी गये। चिरकाल तक वे वहाँ रहे और विद्यारूपी धन प्राप्त करके योग-मार्ग में भी पारङ्गत हुए। कहते हैं कि एक विद्वान् पण्डित वहां नित्य कथा कहा करते थे, काशी के अनेक पण्डित कथा-श्रवण के लिए वहाँ आया करते थे, सुन्दरदासजी भी जाते थे। एक दिन समस्त श्रोताओं से सभा भरी हुई थी; पर सुन्दरदासजी उस समय तक वहाँ न पहुँचे थे । इस कारण कथा कहने वाले महात्मा सुन्दरदास जी के लिए ठहरे रहे, जब वे आगये तब कथा आरम्भ की । इस पर कुछ श्रोता असन्तुष्ट हुए। वे कहने लगे कि बड़े बड़े विद्वान् श्रोताओं के उपस्थित होने पर आपने कथा आरम्भ न की, एक भिक्षुक के आने तक आप रुके रहे, यह अनुचित बात हुई। इस पर कथा कहने वाले महात्मा ने कहा कि आप शान्त हो लिए, मैं आपको सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करूँगा। तदनन्तर सब श्रोताओं से आप ने कहा कि जो कथा हमने आज तक कही है उसका सारांश आप एक सुन्दर कविता

में लिख लाइए। तिसपर सुन्दरदासजी ने ज्ञान-समुद्र नामक काव्य रचकर सभा में पेश किया। औरों ने भी अपनी अपनी कविता दिखाई। मिलान करने पर सिद्ध हुआ कि कथा का सार जैसी अच्छी तरहसे सुन्दरदासजीने खींचा था वैसी अच्छी तरह और किसीसे नहीं बन पड़ा। तबसे सब पण्डितों ने सुन्दरदासजी को शिरोमणि स्वीकार किया।

ज्ञान समुद्र की प्रशंसा स्वयम महात्मा सुंदरदासजीने इस प्रकार से की है:-

इंद्र वज्रा छंद।

जाति जिती सब छंदन की, बहु सीप भई इहि सागर मांहीं।
हैं तिन में मुकताफल अर्थ, लहैं उन कौं हित सौं अवगाहीं॥
सुंदर पैठि सकैं नहि जीवत, दै डुबकी मर जीवहि जांहीं॥
जे नर ज्ञान कहावत हैं, अति गर्व भरे तिन की गति नाहीं॥

यह सर्व प्रकार से सही है, इस को अन्य प्रकार से वर्णन करने की आवश्यक्ता नहीं है।

सुन्दरदासजी के निम्न लिखित काव्य-ग्रन्थ हस्तलिखित पुरानी पुस्तकों में मैंने देखे हैं:--

१—साखी (बाणी)
२—सबद (पद गाने के)
४—सवैये सुन्दर-काव्य
५—सर्वाङ्ग-जोग
३—ज्ञान-समुद्र
६—पञ्चेन्द्रिय-चरित्र
७—सुख-समाधि
८—स्वप्न-बोध
९—वेद-विचार
१०—उक्त अनूप
११—अद्भुत उपदेश
१२—पञ्च-प्रभाव
१३—गुरु-सम्प्रदाय
१४—उत्पत्ति-निशानी
१५—सतगुरु-महिमा
१६—बावनी
१७—सहजानन्द
१८—ग्रह-वैराग्य-बोध
१९—हरि-बोल-चितावणी
२०—तर्क-चितावणी
२१—विवेक-चितावणी

अष्टक—
१—गुरु-दया
२—भर्म-विधूपण
३—गुरु-कृपा
४—गुरु-उपदेश
५—गुरुदेव-महिमा
६—रामजी
७—नाँमाँ
८—आत्म-अचल
९—पञ्जाबी भाषा
१०—ब्रह्म-स्तोत्र
११—पीर-मुरीद
१२—ज्ञान-झूलना
१३—अजब-ख्याल

फुटकर छन्द:—
१—पवङ्गम छन्द
२—अडिला छन्द
३—मडिला छन्द
४—बारहमासा
५—आयुर्बल-भेद-विचार
६—त्रिविध अन्तःकरण

७—पूर्वी–भाषा–बरवय
८—चौबोला
९—गूढ़ अर्थ

छप्पय छन्द—
१—नौ निद्धि
२—अष्ट सिद्धि
३—सप्त वार
४—बारहमासा
५—बारह राशि

६—छत्र–बन्द छन्द
७—कमल–बन्द छन्द
८—आदि–अक्षरी–दोहा–छन्द
९—मध्य–अक्षरी
१०—निगड़–बन्द
११—सिंहावलोकनी
१२—प्रतिलोम–अणुलोम
१३—वृक्ष–बन्द दोहा
१४—चारों दिसा (भारतकी) के सवइये
१५—अन्त समय की साखी

इन सब ग्रन्थों का जोड़ आठ हजार श्लोकों के बराबर माना जाता है । एक पुस्तक की प्रति संवत् १७७१ विक्रम की लिखी हुई मैंने देखी है । इस में ये सम्पूर्ण ग्रन्थ पाये जाते हैं ।

सुन्दरदासजी अपने जीवन–काल में यातो समाधिस्थित रहते थे या ग्रन्थ रचा करते थ । बहुत काल पीछे वे काशी त्याग कर, नाना प्रदेशों में भ्रमण करते हुए, पुण्यधाम नराणे आये, जो जयपुर राज्यमें दादू पंथियों का मुख्य स्थान है । उस समय स्वामी गरीबदासजी दादूदयालजी की गद्दी पर विराजमान थे । उनको अपने शिष्य-भाव का परिचय देने के लिए और दयालजी में अपनी सच्ची भक्ति दिखाने के लिएसुन्दरदासजी ने वे सवइये रच कर सुनाये जो सुन्दर–काव्य नामक ग्रन्थ के आदि में "गुरुदेव का अङ्ग" नाम से प्रसिद्ध हैं । इन सवइयों को पढ़कर विद्वज्जन सुन्दरदासजी की कविता और उनके कहे हुए गुरु के सच्चे लक्षणों के वर्णन को सराहे विना नहीं रह सकते । इस सुन्दर-काव्य में ३४ अङ्ग हैं । प्रत्येक अङ्ग में, नाना प्रकार के छन्दों में, उपदेश-पूर्ण कविता है, जिस का स्वाद पाठक पढ़ने ही से पा सकते हैं । इस ग्रन्थ को देखने से अपूर्व काव्यरस-पान और सनातन धर्म्म की श्रेष्ठता का ज्ञान प्राप्त होता है । भारत के मत-मतान्तरों के भेद, उनसे होने वाले हानि-लाभ और उनके संशोधन की आवश्यकता को सुन्दरदासजी ने बहुत ही उत्तमता से दिखाया है ।

स्वामी दादूदयाल का पन्थ पक्षपात-रहित सच्चे सार्वभौमिक मार्ग को बतलाता है । उनका वर्णन सुन्दरदासजी ने बहुत अच्छी तरह से किया है । उनका "सहजानन्द" नामक ग्रन्थ जीवन मुक्ति के सरल प्राकृतिक मार्ग का प्रदर्शक है । न उसमें किसी प्रकार के क्लेश उठाने के लिए कहा है न किसी प्रकार अपनी प्रकृति के विरुद्ध मनुष्य के लिए किसी साधन की आवश्यकता बतलाई है । जिस तरह मनुष्य अनायास ही, विना परिश्रम के, श्वासोच्छ्वास लेता रहता है, उसी तरह ज्ञान-योगी सहजानन्द में निमग्न हो कर जीवन का लाभ उठा सकता है ।

सुन्दरदासजी बहुत काल तक दादू-द्वारे, नराणे ग्राम में, निवास करके पञ्जाब की तरफ चले गये और लाहौर, अमृतसर आदि स्थानों में विचरणकरके शेखावाटी, जयपुर राज्य

के फतहपुर में आये। वहाँ वे भगवत उपासना करते रहे। अपने रचित "चारि दिसा के सवइयों" में भारत भ्रमण का कुछ हाल सुंदरदासजी ने खुद लिखा है, तहां एक सवइया यह है:—

पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिन, देस विदेस फिरे सब जानैं।
केतेक दिवस फतेपुर माहिं, जु केतेक दिवस रहेडिडवानैं॥
केतेक दिवस रहे गुजराति, उहाँ हूँ कछू नहिं आयौ टानैं।
अब सोचिविचारिके सुंदरदास, जु याही तें आनि रहे कुरसानैं॥

अन्त में आप अपने गुरभाई महात्मा रज्जब जी से मिलने को साँगानेर की तरफ़ चले। रास्ते में उन्हों ने सुना कि रज्जबजी महाराज शरीर त्याग कर गये। यह सुनते ही सुन्दरदासजी भी वहीं समाधि लगा कर ब्रह्म में लीन हो गये।

सुन्दरदासजी के पांच शिष्य प्रसिद्ध हैं—अर्थात्—

१—पण्डित दयालदासजी।
२—पण्डित श्यामदासजी।
३—पण्डित दामोदरदासजी।
४—पण्डित नारायणदासजी।
५—पण्डित बालकरामजी वेदान्ती (ये बड़े योगी थे)।

सुन्दरदासजी की महिमा जो अन्य महात्माओं ने गाई है सो मैं आगे उद्धृत करता हूँ:—पण्डित राघवदास-कृत भक्तमाल में, जो संवत् १७१७ विक्रम में रचा गया था, इस प्रकार सुन्दरदासजी के विषय में लिखा है:—

छप्पय छन्द।

संकराचार्य दूसरौ दादू कै सुन्दर भयौ,
द्वैत भाव करि दूरि एक अद्वैत हि गायौ।
जगत भगत षट दरस सबनि कै चाणक लायौ,
अपणौं मत मजबूत थप्यौ अरु गुर पष भारी।
आन धर्म करि षंड अजा घट तैं निरवारी,
भक्ति ज्ञान हठ सांष्य लौ सर्व शास्त्र पारहि गयौ।
संकराचार्य दूसरौ दादू कै सुन्दर भयौ॥

मनहर छन्द।

दादूजी के पन्थ मैं सुन्दर सुखदायी संत पोजत न आवै अन्त ज्ञानी गलतान हैं।
चतुर निगम षड षोडस अठार नव सर्व को विचार सार धखो सुन कान हैं।
सांष्य जोग कर्मजोग भगति भजन–पन परषि सकल जानै अकिल निधान है।
वैश्य कुल जनम, विचित्र विग वाणी जाकी राघौ कहै ग्रन्थन के अर्थन को भान है॥ १॥
चौसा है नग्र चौपा, दूसर हैं साहूकार सुन्दर जनम लीयौ ताही घर आइकै।

पुत्र की चाह पति दई है जनाइ तृया कह्यौं समुझाइ स्वामी कहौं सुखदाय कैं ।
स्वामी सुप कही सुत जन्मै गो सही पै लेगो वैराग नहीं घर रहै मायकैं ।
एकादस वर्ष मैं त्यागि घर माल सब वेदान्त पुराण सुनै बानारसी जाइकैं ।। २ ।।
आयो है नवाब फत्तेपुर मैं लग्यो है पाइ अजमत देहु तुम गुसंइयां रिझायौ है ।
पछै जौं गलीचा कौं उठाइ कर देष्यौ तब फत्तेपुर बसै नीचै प्रगट दिपायौ है ।
येक नीचै सहर बसै येक नीचै लसकर येक नीचै गैर बंन देपि भय आयौ है ।
रायौ अद्भुत बात बरनौं कहा बपानि सुन्दर ज्ञानी को कोउ पार नहीं पायौ है ॥ ३ ॥

सुन्दरदास के शिष्य पण्डितवर बालकरामजी ने इस प्रकार अपने गुरु की महिमा वर्णन की है:--

छप्पय छन्द ।

सतगुर सुन्दरदास जगत मैं पर उपगारी । धन्य धन्य अवतार धन्य सब कला तुम्हारी ।।
सदा एक रस रहै दुःष दूंदर को नाहीं । उत्तम गुन सो आहि सकल दीसैं तुम मांहीं ।।
सांष्य जोग अरु भक्ति पुनि सब्द ब्रह्म संयुक्तहै।कहै बालकराम विवेकनिधि देषैं जीवनमुक्तहै।।

चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी ।

॥ श्रीः ॥

अथ पंचेंद्रिय चरित्र ।

दोहा ।

नमस्कार गुर देवकौं, कीयौ बुद्धि प्रकास ॥
इंद्रिय पंच चारित्रकौं, वर्नत सुंदर दास ॥ १ ॥
निर्भय वन मैं फिरत गज, मदन मत्त अति अंग ॥
संक न आनैं और की, क्रीडत अपनैं रंग ॥ २ ॥

चौपाई छंद ॥

गजक्रीडत अपनैं रंगा । वन मैं मद मत्त अनंगा ॥
बलवंत महा अधिकारी । गहि तरवर लेइ उपाड़ी ॥ ३ ॥
जब दंत भौमि धरि चंपै । तब भार अठारह कंपै ॥
जहँ मन मॉनैं तहँ धावै । फल भक्ष करै जो भावै ॥ ४ ॥
पुनि पीवै निरमल नीरा । पैठै जल गहर गंभीरा ॥
जित ही तित सूँडि पसारै । गज नॉनॉं भाँति पुकारै ॥ ५ ॥
बैठै जब ही मन मॉनैं । सोवै तब भय नहिं आँनैं ॥
पुनि जागै अपनी इच्छा । उठि चलै जहाँ कौं बँछा ॥ ६ ॥
ऐसी विधि वन मैं डोलै । कोइ अपनैं बल नहिं तोलै ॥
कछु मन मैं धरै न संका । हम तै कोउ और न बंका ॥ ७ ॥
अति गर्भ करै अभिमॉनीं । बूझै नहिं अकथ कहानीं ॥
घट मैं अग्यान अँधेरी । नहिं जॉनत अपनौं बैरी ॥ ८ ॥
इक मनुष तहाँ कोउ आवा । तिंहिं कुंजर देषन पावा ॥
उन ऐसी बुद्धि विचारी । फिरि आवा नग्र मँझारी ॥ ९ ॥
तब कह्यौ नृपति सौं जाई । इक गज बन माँझ रहाई ॥

हम पकरि इहाँ लै आवैं । तव कहा वधाई पावैं ॥ १० ॥
राजा कहे करौं निहाला । तेरे लोग कुटँव प्रतिपाला ॥
जे लै आवै गज भाई । देहौं तव वहुत वधाई ॥ ११ ॥

दोहा छंद ।

वहुत वधाई देहुँ तोहि, लै आवै गजराज ॥
तौ तू मेरौ कांम कौं, करौं सवनि सिरताज ॥ १२ ॥

चौपाई छंद ।

तव कीयौ दूत सलामूँ । हम करि हैं नृपति को कामूँ ॥
कोउ देहु हमारे संगा । दसवीस जने वल अंगा ॥ १३ ॥
नृप तव ही वेगि वुलाये । तिन आवत सीस नवाये ॥
नृप कही सवनि सौं गाथा । तुम जावहु इन कै साथा ॥ १४ ॥
नृप दूत हिं वीरा दीनौं । उन सिर चढाइ करि लीनौं ।
तव विदा होइ घरि आवा । कछु मन मैं फिकर उपावा ॥१५॥
पुनि सुमिरे सिरजन हारा । तुम देहु वुद्धि करतारा ॥
तव वुद्धि विधाता दीन्हीं । कागद की हथिनी कीन्हीं ॥ १६ ॥
विच कालवूत भरि लीया । कछु अधिक तमासा कीया ॥
अति चित्र विचित्र सवारी । तव कीये चिन्ह विचारी ॥ १७ ॥
मनु अवही उठि कै भागै । मुष वोलत वार न लागै ॥
उन हुन्नर ऐसा कीन्हाँ । इक जीव माँहिं नहिं दीन्हाँ ॥ १८ ॥
तव दूत तहाँ लै जाँहीं । गज रहैं तहाँ वन माँहीं ॥
उन एक सरोवर पेषा । गज आवत जावत देषा ॥ १९ ॥
तहँ धंधक कीन्हाँ जाई । पतरे त्रिण लिये छिपाई ॥
त्रिण ऊपरि मृतका नाषी । ता ऊपरि हथिनी राषी ॥ २० ॥
वै दूत रहे छिपि भाई । चुप चाप असारति लाई ॥
कोउ समय तहाँ गज आवा । जलपान करन नहिं पावा॥२१॥

त्रिय देषत अति वेहाला । भयौ काम अंध ततकाला ॥
हथिनी कौ देषि सरूपा । सठ धाइ परयौ अँध कूपा ॥ २२ ॥

दोहा छंद ।

धाइ परयौ गज कूप मैं, देष्या नहीं विचारि ॥
काम अंध जानैं नहीं, कालवूत की नारि ॥ २३ ॥

चौपई छंद ।

गज काल वूत नहिं जानाँ । वुधि विसरि गई नीदानाँ ॥
गज कूदि कूदि सिर मारे । भूमी धरि सूँडि पछारै ॥ २४ ॥
वल वहुतै करै गँवारा । निकसन का कतहुँ न द्वारा ॥
तव आये दूत नजीका । देष्या हस्ती अति नीका ॥ २५ ॥
उन साँकल तुरति मँगाई । कल ही कल पग पहराई ॥
दिन दस नहिं दियौ अहारा । वल छीन भया तिहिं वारा॥२६॥
जव उतरि गई सव रीसा । तव चढे महावत सीसा ॥
उन अंकुस कर गहि लीना । कुंजर कै मस्तकि दीना ॥ २७ ॥
गज तवहि कछू दुख पाया । अंकुस कै जोर नवाया ॥
तव पंधक माहिं तैं काढे । उन वाहरि कीये ठाढे ॥ २८ ॥
पठये राजा पहि साथी । ले आये धरिकै हाथी ॥
उन किया नजरि सौं मेला । पुनि भये परसपर भेला ॥ २९ ॥
गज सवहिन सौं पतियानाँ । वसि भये तव हि उन जानाँ ॥
ले चले नृपति कै पासा । पूजी दूतन की आसा ॥ ३० ॥
जव निकटि नग्र कै आये । तव सव को देषन धाए ॥
गज लिये गये दरवारा । नृप आगै कीन जुहारा ॥ ३१ ॥
नृप देषि खुसी भयौ भारी । दीयौ सिरपाव उतारी ॥
पुनि द्रव्य दियौ ततकाला । नृप कीयौ दूत षुसाला ॥ ३२ ॥
गजभया काम वस अंधा । गहि राज दुवारे वंधा ॥

गज काम अंध नहिं जानाँ। माँनुष कै हाथ विकानाँ॥ ३३॥
गज व्रैसाये तैं वैसै। ज्यौं कहै महावत तैसै॥
अति भूष प्यास दुष देषै। पिछला सुष कतहूँ न पेषै॥ ३४॥
पुनि सीस धुनै पछितावै। परि वसि कछु होइ न आवै॥
गज काम अंध गहि कीन्हाँ। यह काम वहुत दुष दीन्हाँ॥३५॥

दोहा छन्द।

काम दिया दुष बहुतही, वन तजि वंध्या ग्राम॥
गज वपुरे की को कहै, विश्व नचाया काम॥ ३६॥

चौपाई छन्द।

यह काम वली हम जाना। ब्रह्मा पुनि काम भुलाना॥
यह काम रुद्र भरमाया। भिलनी कें पीछैं धाया॥ ३७॥
यह काम हिं इंद्र निपाता। भग सहस किये तिहिं गाता॥
यहि काम चंद्रमा वाहे। गुर ग्रहनी देषि उमाहे॥ ३८॥
यहि काम पराशर अंधा। उन धाय गही मछगंधा॥
यहि काम शृंगि ऋषि ताये। तेहि नीकी भाँति नचाये॥३९॥
यहि काम वालि संघारा। रघुनाथ वाँन भरि मारा॥
यहि काम लंक पति षोये। दस सीस पकारि कैं रोये॥ ४०॥
यहि काम विश्वामित्र डोले। तेउ देषि उर्वसी भूले॥
यहि काम कीचक संतापे। गहि भीम षंभ तरि चापे॥ ४१॥
यहि काम अनेक विगोये। जो अंध निसा मैं सोये॥
देवासुर मानुष जेते। गण गंध्रप मारे केते॥ ४२॥
पुनि जीव लक्ष चौरासी। डारी सवहिन कौ पासी॥
यहि काम लोक त्रिय लूटे। कोइ सरणि राम के छूटे॥ ४३॥
विनु परसत यहु दुष होई। परसत कैसी गति लोई॥
कहै सुंदरदास विचारा। देषहु गज के व्यौहारा॥ ४४॥

दोहा छन्द ।

गज व्यौहारहि देषिकैं, वेगिहि तजिये काम ॥
सुंदर निसदिन सुमिरिये, अलष निरंजन राम ॥ ४५ ॥

इति श्रीसुंदरदास विरचितायां गज चरित्रायां काम इंद्रिय प्रसंग प्रथमो उपदेशः ॥ १ ॥

अथ भ्रमर चरित्र ॥ २ ॥

दोहा—बैठत भ्रमर कली कली, चंचल चपल सुभाव ॥
तृप्ति न होइ सुगंध तैं, फिरत सु अपनैं चाव ॥ १ ॥

चौपाई ।

अलि फिरत सु अपनैं चाऊ । अति चंचल चपल सुभाऊ ॥
पियरो मुष स्यॉंम सरीरा । कहुँ रहत नहीं पल थीरा ॥ २ ॥
अलि अनँत पहुप को बसिया । ऐसो कोउ और न रसिया ॥
अलि बास लेइ उड़ि जाई । कहुँ एक न ठौर रहाई ॥ ३ ॥
अलि करत फिरै गुंजारा । जाकै मकरंद अहारा ॥
कवहूँ कै दैव सँजोगा । अलि गयौ कमल के भोगा ॥ ४ ॥
वहु कमल प्रफुल्लित जोया । मन का धोषा सब षोया ॥
बैठा अंबुज कै मांहीं । सठ काल सु जानैं नांहीं ॥ ५ ॥
तिंहिं कमल प्रेम रवि केरा । रवि अस्त भयौ तिंहिं बेरा ॥
तब अंबुज संपुट लावा । अलि मॉंहिं रहे सुष पावा ॥ ६ ॥
मन मैं यौं करत विचारा । सब राति पिऊं रस सारा ॥
उडि जाउँ होइ तब भोरा । रजनी आऊँ इहिं ठौरा ॥ ७ ॥
यह उत्तम ठौर जु बासा । इहिं कारि हौं सदा बिलासा ॥
हम बैठे पुष्प अनेका । कोउ कमल समान न एका ॥ ८ ॥
यौं करतैं रैन बिहानी । बूझी नहिं अकथ कहानी ॥
इक गज आयौ बहु प्राता । कछू कीया षेल विधाता ॥ ९ ॥

रवि उदै भया सो नाँहीं । जातैं संपुट षुलि जाहीं ॥
संपुट सो रहिगा लागा । अलि भीतरि रहे अभागा ॥ १० ॥

दोहा छन्द ।

भीतरि रहिगा कमल कै, अलि सुगंध लिपटाइ ॥
मूरष मर्म न जानिया, काल पहूँच्या आइ ॥ ११ ॥

चौपाई छन्द ।

जल मैं गज पैठा धाई । जल पीया बहुत अघाई ॥
उनमत्त करै गज क्रीड़ा । नहिं जानत पर की पीड़ा ॥ १२ ॥
धरि ऐसैं सुंडि चलाई । कछु नैक दया नहिं आई ॥
गहि अंबुज लियौ उपारी । गज पीठि सु अपनी झारी ॥ १३ ॥
पुनि पकरि पाँव तर दीनाँ । अलि मुवौ माँहिं मति हीनाँ ॥
जो वींधे जाइ सुवासा । तो भया भ्रमर का नासा ॥ १४ ॥
यहि गंध विषै रुचि जाकी । पुनि होइ यही गति ताकी ॥
नासा इंद्रिय के घाले । अलि प्राण त्यागि कै चाले ॥ १५ ॥
जिन गंध विषै मन दीनाँ । ते भये भ्रमर ज्यौं छीनाँ ॥
जिन कै नासा वसि नाँहीं । ते अलि ज्यौं देषु विलाहीं ॥ १६ ॥
ऐसी रुचि कबहुँ न करिये । अलि देषि देषि अति डरिये ॥
यह रुचि हरि नाम भुलावै । यह रुचि सो काम जगावै ॥ १७ ॥
तब काम तैं उपजै क्रोधा । पुनि लोभ मोह बड़ जोधा ॥
सबही गुन उपजैं आई । जो रंचक गंध सुहाई ॥ १८ ॥
चोवा चंदन करपूरा । कसतूरी अगर हजूरा ॥
सिर लाये तेल फुलेला । तब कहाँ राम सौं मेला ॥ १९ ॥
पुनि और अनेक सुगंधा । ये सकल जीव कूँ फंधा ॥
जन सुंदर कहि समझावा । यह भ्रमर चरित्र सुनावा ॥ २० ॥

दोहा छंद।

भ्रमर चरित्र सुनाइया, नासा इंद्रिय जानि ॥
सुंदर यह रुचि त्यागि कैं, हरि चरन कँवल रुचि आनि॥२१॥

इति श्रीसुंदरदास विरचितायां भ्रमर चरित्रायां नासा इंद्रिय प्रसंग द्वितीयो उपदेशः ॥ २ ॥

अथ मीन चरित्र ॥ ३ ॥

दोहा—मीन मगन जलमैं रहै, जल जीवन जल ग्रेह ॥
जल विछुरत प्राणहि तजै, जलसौं अधिक सनेह ॥ १ ॥

चौपाई।

वाके जलसौं अधिक सनेहा। जल विन दुष पावत देहा ॥
जल ही मैं विचरत भाई। जल ही मैं केल कराई ॥ २ ॥
कवहूँ जल ऊपरि पेलै। कवहूँ गहिरे तन मेलै ॥
छिन मैं जो जन फिरि आवै। ताकी गति कोई न पावै ॥ ३ ॥
कछु संक नहीं मन माँहीं। अपनौं रिपु जानत नाँहीं ॥
नृप साह चढ़ै जो साथा। तऊ मीन न आवै हाथा ॥ ४ ॥
इक धीवर बुद्धि उपाई। वनसी की सौंज वनाई ॥
लोहे का कंटक कीनाँ। ता उपरि आमष दीनाँ ॥ ५ ॥
लीया लंवा इक डोरा। कंटक वाँध्या तिंहिं छोरा ॥
लै आयौ जल के पासा। सव देपैं लोक तमासा ॥ ६ ॥
जल भीतरि वनसी डारी। तहँ आयौ मीन निहारी ॥
सठ जिभ्या स्वाद भुलानाँ। उन कंटक काल न जानाँ ॥ ७ ॥
गहि माँस लिया मुष माँहीं। सठ कंटक देष्या नाँहीं ॥
मुष मैं तैं भीतरि लीला। तव डोरा कर मैं हीला ॥ ८ ॥
उन धीवर वेगि सँभारा। जल महिं तैं वाहिर डारा ॥
अति छट पटाइ वहुतेरा। कह होइ काल जव घेरा ॥ ९ ॥

घर कैउक धरि धरि पटका । कछु प्राण चले कछु अटका ॥
तब धीवर धरि लै आवा । उन गली गली दिपलावा ॥ १० ॥
सठ स्वाद माँहिं मन दीनाँ । जिह्वा घर घर का कीनाँ ॥
जिस गहरे ठौर ठिकानाँ । सो रसना स्वाद विकानाँ ॥ ११ ॥
तब गाहक लै गयौ मोली । कछु दिया गाँठ तैं पोली ॥
उन पंड पंड गहि कीनाँ । यहि स्वाद वहुत दुप दीनाँ ॥ १२ ॥
दोहा—स्वाद दिया दुप बहुतही, मीन गये तजि प्रान ॥
आगैं और कथा सुनहु, इक बनचर स्वाद भुलान ॥१३॥

चौपाई ।

बनचर होता बन माँहीं । नाना विधि केलि कराँहीं ॥
कबहूँ द्रुम द्रुम परि डोलै । कबहूँ मुप रह रह बोलै ॥ १४ ॥
कोउ बाजीगर तहँ आया । मरकट कौं फंधा लाया ॥
इक गागरि भुइ मैं गाड़ी । तिहिं माँहि मिठाई छाड़ी ॥ १५ ॥
पुनि छिद्र कियौ एक आनाँ । मरकट कै हाथ समानाँ ॥
कर पैसै गागर माँहीं । मूठी तैं निकसै नाँहीं ॥ १६ ॥
ऐसी विधि फंध पसारा । कछु वाहर चरबन डारा ॥
पुनि आय छिप्या कहुँ जाई । मरकट आवा तहँ धाई ॥ १७ ॥
कपि चरबन मुप मैं नावा । अति स्वाद लगा सब पावा ॥
पुनि गागर मैं कर मेला । कछु भया दई का पेला ॥ १८ ॥
कपि भीतर बाँधी मूठी । निकरै नहिं वहुरि अपूठी ॥
कपि गागरि दंतन पंडे । सठ भीतरि मूठि न छँडे ॥ १९ ॥
अति किचकिचाय कियौ सोरा । बाजीगर आवा दौरा ॥
उन रसरी गरमैं नाई । तब गागरि फोरि उड़ाई ॥ २० ॥
बाजीगर घर लै आवा । कर लकुटी लेइ डरावा ॥
नीकै करि दीनी त्रासा । बाजीगर कीन तमासा ॥ २१ ॥

जैसैं कहे तैसैं नाँचै । माँनै लकुटी की त्रासै ॥
सब काहू करै सलामूँ । कपि ऐसा किया गुलामूँ ॥ २२ ॥
जौ जिह्वा नहीं सँभारा । तौ नाचै घरि घरि बारा ॥
यह बात कठिन अति भाई । यह स्वाद सबन कौं षाई ॥ २३ ॥

दोहा छंद ।

स्वाद सबनि कौं बसि किया, कहत सयाँने दास ॥
कपि की कहा चलाइये, सुनहुँ और उल्हास ॥ २४ ॥

चौपाई ।

इक सुनहुँ और उल्हासा । जो कीया स्वाद तमासा ॥
शृङ्गी ऋषि वनमैं रहई । जिह्वा इंद्री दृढ़ गहई ॥ २५ ॥
जिह्वा इंद्री नहिं डोलै । पुनि मुष सौं कबहुँ न बोलै ॥
वह सूके पत्र चवाई । फल गिरे परे सो षाई ॥ २६ ॥
ऋषि देह नग्न अति छीनाँ । तृण ऊपरि आसन कीनाँ ॥
ऐसी बिधि तप करि धीरा । बैठे सरिताके तीरा ॥ २७ ॥
कहुँ मेघ न बरसै भाई । तब राजहिं कथा सुनाई ॥
जो शृंगी ऋषि यहँ आवै । तौ इंद्र मेघ बरषावै ॥ २८ ॥
तब बोले नृपति उदासा । शृंगी ऋषि बन माँहिं बासा ॥
क्यूँ आवै नगर मंझारी । वहिं उग्र तपस्या धारी ॥ २९ ॥
गनिका इक नृप पहि आई । उन बात यहै समझाई ॥
शृंगी ऋषि कौं लै आवैं । तब कौन मौज हम पावैं ॥ ३० ॥
पुनि नृपति कहै इहि बेरा । हौं देउँ द्रव्य बहुतेरा ॥
गनिका जुहार तब कीनौं । नृप बीरा ताकौं दीनौं ॥ ३१ ॥
गनिका अपने घरि आई । उन और सषी समझाई ॥
म चलहु हमारे संगा । हम जाइ करैं तप भंगा ॥ ३२ ॥

दोहा—भंग करैं तप जाइके, तौ नृप करहिं सनेह ॥
अब सषि विलम न कीजिये, सामग्री सब लेह ॥ ३३ ॥

चौपाई।

तब सामग्री सबलीनी। जो नाना विधि उनकीनी ॥
चोवा चंदन करपूरा। कस्तूरी केसरि जूरा ॥ ३४ ॥
नाना विधि और सुवासा। ले चली शृंगि ऋषि पासा ॥
पुनि लाय बहुत पकवाना। लडुवा लपसी रस पाना ॥ ३५ ॥
गनिका बन मैं तब आई। इक नीकी ठौर बनाई ॥
तुम बैठो यहाँ सहेली। हौं जैहौं उहाँ अकेली ॥ ३६ ॥
देषौं ऋषि की गति जाई। कहि हौं तुम सौं तब आई ॥
गनिका गइ ऋषिके भेषा। ऋषि बोलत तहां न देषा ॥ ३७ ॥
जब भई पुध्या की बेरा। ऋषि चहूं दिसा तब हेरा ॥
पुनि उठे तबहिं ततकाला। जल तैं मुख हाथ पछाला ॥ ३८ ॥
ऋषि केउक तरवर देषे। फल पत्र सबनि के पेषे ॥
तब सूके पात चबाये। फल गिरे परे सो खाये ॥ ३९ ॥
ऐसी विधि कीन अहारा। जल पान किया तिहिं बारा ॥
ऋषि आसन बैठे आई। गनिका ऋषि की गति पाई ॥ ४० ॥
फिरि आई अपने डेरा। सषियन कूं दीन निवेरा ॥
वा सेवै मर्म हम जानाँ। अब लै जाऊँ पकवानाँ ॥ ४१ ॥
तब सामग्री सब लीनी। सषियन कौं सिष्या दीनी ॥
तब लै आई उँहिं ठौरा। ऋषि मर्म न जानत औरा ॥ ४२ ॥
लडुवा द्रुम द्रुम तर डारे। मैदा के पत्र सँवारे ॥
लपसी पत्रनि पर लाई। गनिका सब युक्ति बनाई ॥ ४३ ॥

दोहा—जुक्ति बनाई जानि सब, जगै मदन की ताप ॥
गनिका पासी रोपि कैं, लागि रही कहुँ आप ॥ ४४ ॥

चौपाई ।

पुनि आपु रही कहुँ लागी । ऋषि के षुध्या तव जागी ॥
ऋषि चहूं दिसा पुनि जोया । तव उठे हाथ मुष धोया ॥ ४५ ॥
ऋषि कैऊ तरवर ताके । कछु गिरे वहुत फल पाके ॥
ऋषि लै सुषि मैं छिटकावा । कछु औरै स्वाद जनावा ॥ ४६ ॥
ऋषि कीया वहुत अहारा । अति स्वाद लग्यौ तिहिं वारा ॥
पुनि पीयौ ऊपरि पानी । ऋषि की सुधि सबै हिरानी ॥ ४७ ॥
ऋषि आये अपनी ठौरा । मन भयो और कौ औरा ॥
अव आसन लगै न भाई । ऋषि रहे छोड़ि छिटकाई ॥ ४८ ॥
गनिका तव लाइ सुवासा । फल लै आई ऋषि पासा ॥
ऋषि कौं पूछी कुसलाता । ऋषि कही परसपर वाता ॥ ४९ ॥
शृंगी ऋषि पूछे हुरहू । तुम किंहिं वन मैं तप करहू ॥
गनिका कहै फल जहँ ऐसे । हम तिंहिं वन मैं तप वैसे ॥५०॥
ऋषि सूँघन लागे अंगा । यहु मृतिका कैसे रंगा ॥
गनिका कहै हम जिंहिं ठाँऊँ । तहँ मृतका यही विछाऊँ ॥५१॥
ऋषि राषहु भाव हमारा । फल करिये अंगीकारा ॥
ऋषि वहुरि कछू फलषाया । गनिका सौं नेह वढ़ाया ॥ ५२ ॥
गनिका तव लागी सेवा । वहु भाँति षवावै मेवा ॥
पुनि जल सीतल अंचिवावै । ता माँहि सुगंधि मिलावै ॥ ५३ ॥
ऋषि अति ही भये प्रसन्ना । तुम निकटि रहौ निसदिन्ना ॥
गनिका नजीक ह्वै सूती । घर घाले वहुत निपूती ॥ ५४ ॥
जव लग्यौ अंग सौं अंगा । ऋषि कीयौ तपको भंगा ॥
गनिका कीयौ तप छीना । ऋषि भये वहुत आधीना ॥ ५६ ॥

दोहा—वहुत भये आधीन ऋषि, सुधि सव गई हिराइ ॥
मृतकाहि फेरि जिवाइया, गनिका वड़ी वलाइ ॥ ५६ ॥

चौपाई ।

गनिका कहे सुनु ऋषि प्यारे । अब आसन चलहु हमारे ॥
ऋषि चले वार नहिं लाई । गनिका अपनैं लै आई ॥ ५७ ॥
उठि और सषी पग लागीं । हम धन्य आज बड़ भागीं ॥
ऋषि आसन दै वैठाये । नाना पकवान षवाये ॥ ५८ ॥
ऋषि देषि सवनि कौ भाऊ । अति रोम रोम सुष पाऊ ॥
ऋषि कहैं इनन के गाता । ये कौन वृच्छ के पाता ॥ ५९ ॥
गनिका कहै सुनि ऋषि लेहू । सव आतिथी हमारे येहू ॥
इनकै आश्रम द्रुम आहीं । फल पत्र वड़े वड़ ताहीं ॥ ६० ॥
अव हम तुम मिलि तहँ जइये । इन कौ सुष दै तव अइये ॥
ऋषि चले विलंव न कीनौ । गनिका तव कर गहि लीनौ ॥६१॥
लै आई नगर मँझारी । ऋषि देष्या द्रिष्टि पसारी ॥
ऋषि सोर सुन्यौं जव कानाँ । मन मैं उपज्यौ तव ज्ञानाँ ॥६२॥
हौं इहाँ कहाँ तैं आवा । यह स्वाद वाँधि मोंहि लावा ॥
ऋषि सोवत से जव जागे । कर झटकि अपूठे भागे ॥ ६३ ॥
पुनि आये ऋषि वन माँहीं । मन मैं वहुतै पछितांहीं ॥
जो रसना स्वादहि लागी । तौ पीछैं इंद्री जागी ॥ ६४ ॥
जो रसना स्वाद न होई । तौ इंद्री जगै न कोई ॥
कहै सुंदरदास सयानाँ । यह मीन चरित्र वषानाँ ॥ ६५ ॥

दोहा छंद ॥

मीन चरित्र विचारि कै, स्वादि सवै तजि जीव ।
सुंदर रसनाँ रातदिन, राम नाम रस पीव ॥ ६६ ॥

इति श्रीसुंदरदासेनविरचितायां मीनचरित्रायां इंद्रियप्रसंग तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

अथ पतंग चरित्र ॥ ४ ॥

दोहा—देह दीप छवि तेल त्रिय, वाती वचन वनाय।
वदन जोति दृग देषि कैं, परत पतंगा आइ॥ १ ॥

चौपाई ॥

तहँ परत पतंगा आई। वह जोति देषि जरि जाई॥
कछु षान पान नहिं होई। जरि भसम भये सठ सोई॥ २ ॥
उन अंध अग्नि नहिं जानी। दृग देषत बुद्धि नसानी।
उन देषि जोति उजियारा। सब तन मन अपना जारा॥ ३ ॥
यह दृष्टि प्रबल अति भारी। नहिं रोकि जाइ हत्यारी॥
यह दृष्टि करै वेहाला। यह दृष्टि हि चलै कुचाला॥ ४ ॥
यह दृष्टि चहूँ दिसि धावै। यह दृष्टि हि षता षवावै॥
यह दृष्टि जहाँ जहँ अटकै। मन जाइ तहाँ तहँ भटकै॥ ५ ॥
यह दृष्टि निहारै वासा। यह दृष्टि जगावै कासा॥
जव देषै दृष्टि स्वरूपा। तव जाइ परै अँध कूपा॥ ६ ॥
पहलैं मन दृष्टि पठावै। तव सकल संदेसा पावै॥
जव दृष्टि हि दृष्टि मिलानी। तव अंतर की मनजानी॥ ७ ॥
यहि दृष्टि मरम जव पावा। तव पीछैं तैं मन धावा॥
मन कै पीछैं तन जाई। सव ही तब धर्म नसाई॥ ८ ॥
कोइ जोगी जती सन्यासी। वैरागी और उदासी॥
जो देह जतन करि राषै। तौ दृष्टि जाइ फल चाषै॥ ९ ॥
अति करहि विप्र आचारा। दे चौका लीक निकारा॥
जो सूद्र त्रिया तहँ दरसै। तौ दृष्टि जाइ तन परसै॥ १० ॥
बाजीगर पुतरि नचावै। सब हाव भाव दिखलावै॥
कपि झूठ साच करि जाना। सठ देषत दृष्टि भुलाना॥ ११ ॥

दोहा—सबै भुलाने दृष्टि में, बुद्धि गई सब नासि ।
आगैं अबहि सुनौ कथा, और दृष्टि की पासि ॥ १२ ॥

चौपाई ॥

इक और दृष्टि की पासी । कछु कहतैं आवत हासी ॥
कोइ डाइन दृष्टि चलावै । तब बालक अति दुष पावै ॥ १३ ॥
जब डाइन की सुधि चीन्हीं । तब पकरि फजीती कीन्हीं ॥
पहलैं गहि मूँड मुडावा । पीछैं मुष कालि करावा ॥ १४ ॥
पुनि पकरि नाक धरि काटी । उन रक्त जीभ सौं चाटी ॥
तब लैकरि गदहि चढ़ाई । पुनि गली बजार फिराई ॥ १५ ॥
लरिका सब पीटहिं तारी । उनि बथा रही मन मारी ॥
सब ऐसैं लोक सुनावै । जो करै सु तैसा पावै ॥ १६ ॥
यह दृष्टि तना फल देषा । उनि दृष्टि सु अपनी पेषा ॥
यह दृष्टि हि पेल पिलावै । यह दृष्टि हि बहुत असावै ॥ १७ ॥
यह दृष्टि हि माया ताकै । यह दृष्टि न कबहूँ थाकै ॥
यह दृष्टि जाइ घर फोरै । यह दृष्टि हि गाँठी छोरै ॥ १८ ॥
यह दृष्टि हि महल उठावै । यह दृष्टि हि ठौर बनावै ॥
यह दृष्टि हि वस्त्र जु पेषै । यह दृष्टि ओरसी देषै ॥ १९ ॥
यह सकल दृष्टि की बाजी । सब भूले पंडित काजी ॥
यह दृष्टि कठिन हम जाना । देवासुर दृष्टि भुलाना ॥ २० ॥
कोइ संत दृष्टि यह आनैं । सब ठौर ब्रह्म पहिचानैं ॥
कहै सुंदर दास प्रसंगा । यह देषि चरित्र पतंगा ॥ २१ ॥

दोहा छंद ॥

देषि चरित्र पतंग का, दृष्टि न भूलौ कोइ ।
सुंदर रमता राम कौं, निस दिन नैंन सु जोइ ॥ २२ ॥

इति श्रीसुंदरदासेन विरचितायां पतंगचारित्रायां चक्षुरिंद्रिय प्रसंगचतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥

अथ मृगचरित्र ॥ ५ ॥

दोहा—मृग वन वन विचरत फिरै, चहुँ दिशि केलि करंत ।
षेत बिराना षाइकै, होइ रह्यौ मै मंत ॥ १ ॥

चौपाई ॥

मृग होइ रह्यौ मै मंता । चहुँ ओर फिरै विचरंता ॥
मृग हाथ वीस दस डाकै । तृण हालि उठै तब ताकै ॥ २ ॥
कोउ पत्र पवन तैं बाजै । मृग चौंकि फरकि ह्वै भाजै ॥
नहिं काहू का पतियारा । मृग निसदिन रहे हुसियारा ॥ ३ ॥
इक बधिक तहाँ कोउ आवा । उन नीकै नाद बजावा ॥
मृग नाद सुन्यौ जब काना । सुधि बिसारि गई सब आना ॥४॥
मृग ध्यान धरया मन लाई । कछु और नहीं सुधि पाई ॥
मृग थकित भया तिहिं बारा । नहिं तन की कछू सँभारा ॥ ५ ॥
तहँ ऽनेक पत्र तृण हालैं । मृग अब न ठौर तैं चालैं ॥
मृग ऐसैं रहिगौ सीधा । मनु होइ पंक मैं बीधा ॥ ६ ॥
मृग भया नाद वस सोई । मनु लिष्या चित्र मैं कोई ॥
मृग भया अचेत गवाँरा । तब बधिक बाण भरि मारा ॥ ७ ॥
मृग नाद विषै मन दीना । यह नाद प्राण हति लीनां ॥
मृग पहलैं नहीं सँभाला । यह नाद भयौ फिरि काला ॥ ८ ॥
यह नाद विषै मन लावै । सो मृग ज्यूँ नर पछितावै ॥
इहि नाद विषै जो भीना । सो होइ दिनौ दिन छीना ॥ ९ ॥

दोहा—छीज गया मृग नाद रस, भई जीवकी घात ।
एक कहत हौं और अब, सुनहु सर्प की बात ॥ १० ॥

चौपाई ।

इक सर्प रहै बिल माँहीं । तिंहिं कोई जानत नाहीं ॥
तहँ बाजीगर इक आवा । मधुरै सुर नाद बजावा ॥ ११ ॥

जब सर्प सुन्यौ बहु नादा। कछु श्रवणहुँ पायौ स्वादा॥
निकसत नहिं लाई वारा। उन आवत ही फुफकारा॥ १२॥
फन करिकै ध्यान लगावा। बाजीगर तबहिं पिलावा॥
पढि धूरि सीस पर नाई। पुनि पूँछ हाथ महिं आई॥ १३॥
जब बहुत बार लग पेला। तब पकरि पिटारैं मेला॥
बाजीगर लेइ सिधारा। नीकै करि दाँत उपारा॥ १४॥
यहि नादहि पर बस कीना। यह नाद बहुत दुप दीना॥
कोइ नाद न रीझहु भाई। यह नाद बहुत दुपदाई॥ १५॥
यह नाद सुनैं सुप बासी। घर तजि कैं होइ उदासी॥
वह जाइ कहूँ परदेसा। पुनि जोगी कौ करि भेसा॥ १६॥
कहुँ सीत घाम तन छीजे। कहुँ पानी बरसत भीजे॥
पुनि कहुँ जागै कहुँ सोवै। घर यादि करै तब रोवै॥ १७॥
कहुँ भूप प्यास अति मरई। ऐसी विधि निसदिन भरई॥
बिन ग्यान बहुत दुप पावै। वह समझि समझि पछितावै॥१८॥
जो नाद विषै मन लाया। तौ नाग तना फल पाया॥
यह नाद जीव कौं पासी। यह नाद लोह की गासी॥ १९॥
जब सुनि जन लावहिं ताली। कबहूँ नहिं देह सँभाली॥
यह नाद श्रवण ह्वै ध्यावै। तब जाइ समाधि जगावै॥ २०॥
यह नाद करै मन भंगा। यह नाद करै बहु दंगा॥
यहि नाद माँहिं इक ग्याना। तिहिं समझैं संत सयाना॥२१॥
जब नाद सुनावैं कोई। तब ब्रह्म विचारै सोई॥
कहि सुंदर दास सँदेसा। यह मृग चरित्र उपदेसा॥ २२॥
दोहा—मृग चरित्र उपदेश यह, नाद न रीझहु जान।
सुंदर यह रस त्यागि कैं, हरि जस सुनिये कान॥ २३॥

इति श्रीसुंदरदासेन विरचितायां मृगचरित्रायां श्रवणेंद्रियपंचमोपदेशः॥ ५॥

अथ पंच इंद्रिय निर्णय ॥ ६ ॥

दोहा—गज अलि मीन पतंग मृग, इक इक दोष बिनास ।
जाके तनि पंचौ वसैं, ताकी कैसी आस ॥ १ ॥

चौपाई ।

अब ताकी कैसी आसा । जाके तनि पंच निवासा ॥
पंचौ नर के घटि माँहैं । अपना अपना रस चाहैं ॥ २ ॥
यह श्रवण नाद के लोभी । बहु सुनैं तृप्त नहिं तौभी ॥
ये नैंन रूपकूँ धावैं । कबहूँ संतोष न पावैं ॥ ३ ॥
यह नासा गंध सुहाई । सो कबहूँ नहीं अघाई ॥
यह रसना स्वाद भुलानी । इन कबहूँ तृप्ति न मानी ॥ ४ ॥
अध इंद्रिय भोगहि राती । नहिं तृप्ति होइ मधुमाती ॥
यह पंचौ पंच अहारा । अपना अपना रस न्यारा ॥ ५ ॥
इन पंचौ जगत नचावा । इन पंच सबनि कौं षावा ॥
यह पंच प्रबल अति भारी । कोउ सकै न पंच प्रहारी ॥ ६ ॥
ये पंचौ षोवैं लाजा । ये पंचौ करहिं अकाजा ॥
ये पंच पंच दिशि दौरैं । ये पंच नरक मैं बोरैं ॥ ७ ॥
ये पंच करैं मति हीना । ये पंच करैं आधीना ॥
ये पंच लगावैं आसा । ये पंच करैं घट नासा ॥ ८ ॥
ये पंच विकर्म करावैं । ये पंचौ मान घटावैं ॥
ये पंचौ चाहैं गलुका । ये पंच करैं मुनि हलुका ॥ ९ ॥
ये पंच कठिन अतिभाई । ये पंचौ दोहिं गिराई ॥
ये पंचौ किनहुँ न फेरा । नर करहिं उपाइ घनेरा ॥ १० ॥

दोहा—ये पंचौ किन हूँ न फेरिया, बहुते करहिं उपाइ ।
सरप सिंघ गज बसि करैं, इंद्रिय गही न जाइ ॥ ११ ॥

चौपाई ।

ये इंद्रिय गही न जाहीं । नर सूर वीर वहु आहीं ॥
कोइ वाघ पकरि ले आवैं । इंद्रिन का भरम न पावैं ॥ १२ ॥
कोउ सरप गहैं पुनि धाई । इंद्रिन की गति नहिं पाई ॥
कोउ गज उनमत्तहि फेरैं । चलती इंद्री नहिं घेरैं ॥ १३ ॥
कोउ रनमैं सनमुष जूझैं । इंद्रिन की गति नहिं वूझैं ॥
कोउ पैठहिं दरिया माँहीं । इंद्रिय वसि करी न जाँहीं ॥ १४ ॥
कोउ जंत्र मंत्र आराधैं । ये इंद्रिय कवहुँ न साधैं ॥
कोउ मुये मसान जगावैं । जागत इंद्रियन सुवावैं ॥ १५ ॥
कोउ भूत प्रेत वस कीना । पर इंद्रिन के आधीना ॥
कोउ आगम निगम वषानैं । इंद्रिन की सुधि नहिं जानैं ॥१६॥
कोउ कष्ट करैं अति भारी । ये इंद्रिय जाँइ न मारी ॥
कोउ पंच अग्नि मुनि तापैं । ये इंद्रिन के आगैं काँपे ॥ १७ ॥
कोउ मेघाडंवर भीजैं । इंद्रिन के घाले छीजैं ॥
कोउ सीत काल जल पैसैं । इंद्रिन के लालचि ऐसैं ॥ १८ ॥
कोउ धूम पान अति करहीं । इंद्रिन के स्वारथ मरहीं ॥
कोउ कंद मूल वनि पावैं । ये इंद्रिय हाथि न आवैं ॥ १९ ॥
कोउ रहैं रात दिन ठाढ़े । इंद्रिन के लीये गाढ़े ॥
कोउ पकरि रहैं सुष मौना । इंद्रिय वसि होहिं न कौना ॥२० ॥
कोउ पहुमी भ्रमि भ्रमि आवैं । इंद्रियन के प्रेरे धावैं ॥
कोउ सीझैं जाइ हिवालैं । इंद्रिय अपनी नहिं गालैं ॥ २१ ॥
कोउ वूड़ैं झंफा पाती । इंद्रिय वस करी न जाती ॥
कोउ मगर भोज तन कीन्हाँ । इंद्रिय अपनी नहिं चीन्हाँ॥२२॥
कोउ करवत धारहिं सीसा । वसि होहिं न पंच पचीसा ॥
कोउ गरा काटि तन त्यागैं । इंद्रिय सो आगैं आगैं ॥ २३ ॥

पुनि और उपाय अनेका। ये इंद्रिय किनहूँ न छेका॥
ये इंद्रिय अति बलवंता। कोउ राषैं विरले संता॥ २४॥

दोहा छंद॥

ये संत सयाने राषिहैं, इंद्रिय अपनी मारि।
देह दृष्टि सब दूरि करि, पूरण ब्रह्म विचारि॥ २५॥

चौपाई।

ये इंद्रिय जो कोउ मारै। सो पूरण ब्रह्म विचारै॥
ये इंद्रिय जिन वसि कीन्हाँ। तिन आतम रामहि चीन्हाँ॥२६॥
ये इंद्रिय जिन गहि फेरा। तेहि राम कहत है मेरा॥
ये इंद्रिय जिन गहि राषी। ताकी सब बोलहिं साषी॥ २७॥
ये इंद्रिय जाके हाथा। तेहि सब कोउ नावहिं माथा॥
ये इंद्रिय दवैं सो सूरा। ये इंद्रिय दवैं सो पूरा॥ २८॥
ये इंद्रिय दवैं सो जोगी। ये इंद्रिय दवैं सो भोगी॥
ये इंद्रिय दवैं सो ग्यानी। ये इंद्रिय दवैं सो ध्यानी॥ २९॥
ये इंद्रिय दवैं सु जपिया। ये इंद्रिय दवैं सु तपिया॥
ये इंद्रिय दवैं सु यत्ती। ये इंद्रिय दवैं सु सत्ती॥ ३०॥
ये इंद्रिय दवैं सु जैना। ये इंद्रिय दवैं सु अैना॥
ये इंद्रिय दवैं सु सेवा। ये इंद्रिय दवैं सु देवा॥ ३१॥
ये इंद्रिय दवैं सु ओधू। ये इंद्रिय दवैं सु वोधू॥
ये इंद्रिय दवैं सु भुक्ता। ये इंद्रिय दवैं सु मुक्ता॥ ३२॥
ये इंद्रिय दवैं सु पंडित। ये इंद्रिय दवैं सु मुंडित॥
ये इंद्रिय दवैं सु सेषा। ये इंद्रिय दवैं अलेषा॥ ३३॥
ये इंद्रिय दवैं सु जिंदा। ये इंद्रिय दवैं सु बंदा॥
ये इंद्रिय दवैं सु पीरा। ये इंद्रिय दवैं सु मीरा॥ ३४॥

ये इंद्रिय दवैं सु प्यारा । ये इंद्रिय दवैं सु न्यारा ॥
ये इंद्रिय दवैं सु राता । ये इंद्रिय दवैं सु माता ॥ ३५ ॥
दोहा—इंद्रिय दवैं सु अगम अति, इंद्रिय दवैं अगाध ।
इंद्रिय दवैं सु जगत गुर, इंद्रिय दवैं सु साध ॥ ३६ ॥

चौपाई ।

कोउ साधू यह गति जानैं । इंद्रिय उलटी सब आनैं ॥
जब श्रवण सुनैं हरि गाथा । तब श्रवणाँ होइँ सुनाथा ॥ ३७ ॥
हरि दरसन को दृग जोवैं । ये नैंन सुफल तब होवैं ॥
हरि चरण कँवल रुचि प्राणाँ । ये नासा सुफल वषाणाँ ॥३८॥
यह जिभ्या हरि गुण गावै । तब रसना सुफल कहावै ॥
यह अंग संत कौ भेटैं । तब देह सकल दुष मेटैं ॥ ३९ ॥
कछु और न आनैं चीतै । ऐसी विधि इंद्रिय जीतै ॥
यह इंद्रिन कौ उपदेसा । कोइ समझैं साध सँदेसा ॥ ४० ॥
ये पँच इंद्रिन कौ ग्याना । कोउ समझै संत सुजाना ॥
जो सिषै सुनै अरु गावै । सो राम भक्ति फल पावै ॥ ४१ ॥
यह संवत सोलह सैका । नौका परि करिये येका ॥
सावन वदि दशमी भाई । कविवार कह्यौ समझाई ॥ ४२ ॥
हम वुद्धि प्रमान वषाना । कोउ दोस न देउ सयाना ॥
कहै सुंदरदास पवित्रा । अति नीके पंच चरित्रा ॥ ४३ ॥
दोहा—पंच चरित्र वषानिया, निरमल ग्यान प्रकास ।
जो यह पंचौ वसि करै, सो प्रभु सुंदरदास ॥ ४४ ॥

इति श्रीसुंदरदासेन विरचिते पंचेंद्रियचरित्रे मित्र २ प्रसंगवर्णनं नाम षष्ठोपदेशः समाप्तः ॥ ६ ॥

पुस्तकमिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस—बम्बई.